प्रामाण्य-स्वतः या परतः

दर्शनशास्त्रोंमें प्रामाण्य और अप्रामाण्यके 'स्वतः' 'परतः'की चर्चा बहुत प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक दृष्टिसे जान पड़ता है कि इस चर्चाका मूल वेदोंके प्रामाण्य मानने न माननेवाले दो पक्षोंमें है। जब जैन, बौद्ध आदि विद्वानोंने वेदके प्रामाण्यका विरोध किया तब वेदप्रामाण्यवादी न्याय-वैशेषिक-मीमांसक विद्वानोंने वेदोंके प्रामाण्यका समर्थन करना शुरू किया। प्रारम्भमें यह चर्चा 'शब्द' प्रमाण तक ही परिमित रही जान पड़ती है पर एक बार उसके तार्किक प्रदेशमें आने पर फिर वह व्यापक बन गई और सर्व ज्ञानके विषयमें प्रामाण्य किंवा अप्रामाण्यके 'स्वतः' 'परतः'का विचार शुरू हो गया[1]।

इस चर्चामें पहिले मुख्यतया दो पक्ष पड़ गए। एक तो वेद-अप्रामाण्य वादी जैन-बौद्ध और दूसरा वेदप्रामाण्यवादी नैयायिक, मीमांसक आदि। वेद-प्रामाण्यवादियोंमें भी उसका समर्थन भिन्न-भिन्न रीतिसे शुरू हुआ। ईश्वरवादी न्याय-वैशेषिक दर्शनने वेदका प्रामाण्य ईश्वरमूलक स्थापित किया। जब उसमें वेदप्रामाण्य परतः स्थापित किया गया तब बाकीके प्रत्यक्ष आदि सब प्रमाणोंका प्रामाण्य भी 'परतः' ही सिद्ध किया गया और समान युक्तिसे उसमें अप्रामाण्यको भी 'परतः' ही निश्चित किया। इस तरह प्रामाण्य-अप्रामाण्य दोनों परतः ही न्याय-वैशेषिक सम्मत[2] हुए।

---

१. 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्' जैमि० सू० १. १. ५. 'तस्मात् तत् प्रमाणम् अनपेक्षत्वात्। न ह्येवं सति प्रत्ययान्तरमपेक्षितव्यम्, पुरुषान्तरं वापि; स्वयं प्रत्ययो ह्यसौ।' —शाबरभा० १. १. ५. बृहती० १. १. ५. 'सर्वविज्ञानविषयमिदं तावत्प्रतीक्ष्यताम्। प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः किं परतोऽथवा॥' —श्लोकवा० चोद० श्लो० ३३.

२. 'प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणम्' —न्यायभा० पृ० १। तात्पर्य० १. १. १। किं विज्ञानानां प्रामाण्यमप्रामाण्यं चेति द्वयमपि स्वतः, उत उभयमपि परतः, आहोस्विदप्रामाण्यं स्वतः प्रामाण्यं तु परतः, उतस्वित् प्रामाण्यं स्वतः अप्रामाण्यं तु परत इति। तत्र परत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीमांसक ईश्वरवादी न होनेसे वह तन्मूलक प्रामाण्य तो वेदमें कह ही नहीं सकता था। अतएव उसने वेदप्रामाण्य 'स्वतः' मान लिया और उसके समर्थनके वास्ते प्रत्यक्ष आदि सभी ज्ञानोंका प्रामाण्य 'स्वतः' ही स्थापित किया[1]। पर उसने अप्रामाण्य को तो 'परतः' ही माना[2] है।

यद्यपि इस चर्चामें सांख्यदर्शनका क्या मन्तव्य है इसका कोई उल्लेख उसके उपलब्ध ग्रन्थोंमें नहीं मिलता; फिर भी कुमारिल, शान्तरक्षित और माधवाचार्यके कथनोंसे जान पड़ता है कि सांख्यदर्शन प्रामाण्य-अप्रामाण्य दोनोंको 'स्वतः' ही माननेवाला रहा[3] है। शायद उसका तद्विषयक प्राचीन-साहित्य नष्टप्राय हुआ हो। उक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें ही एक ऐसे पक्षका भी निर्देश है जो ठीक मीमांसकसे उलटा है अर्थात् वह अप्रामाण्यको 'स्वतः' ही और प्रामाण्यको 'परतः' ही मानता है। सर्वदर्शन-संग्रहमें—सौगताश्चरमं स्वतः (सर्वद० पृ० २७६) इस पक्षको बौद्धपक्ष रूपसे वर्णित किया है सही, पर तत्त्वसंग्रहमें जो बौद्ध पक्ष है वह बिलकुल जुदा है। सम्भव है सर्वदर्शनसंग्रहनिर्दिष्ट बौद्धपक्ष किसी अन्य बौद्धविशेषका रहा हो।

शान्तरक्षितने अपने बौद्ध मन्तव्यको स्पष्ट करते हुए कहा है कि १—प्रामाण्य-अप्रामाण्य उभय 'स्वतः', २—उभय 'परतः', ३—दोनोंमेंसे प्रामाण्य स्वतः और अप्रामाण्य परतः तथा ४—अप्रामाण्य स्वतः, प्रामाण्य परतः इन चार पक्षोंमेंसे कोई भी बौद्धपक्ष नहीं है क्योंकि वे चारों पक्ष नियमवाले हैं। बौद्धपक्ष अनियमवादी है अर्थात् प्रामाण्य हो या अप्रामाण्य दोनोंमें कोई

एव वेदस्य प्रामाण्यमिति वक्ष्यामः। .....स्थितमेतदर्थक्रियाज्ञानात् प्रामाण्यनिश्चय इति। तदिदमुक्तम्। प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणमिति। तस्मादप्रामाण्यमपि परोक्षमित्यतो द्वयमपि परत इत्येष एव पक्षः श्रेयान्। —न्यायम० पृ० १६०-१७४। कन्दली पृ० २१७-२२०। 'प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलयसम्भवात्। तदन्यस्मिन्ननाश्वासान्न विधान्तरसम्भवः॥' न्यायकु० २. १। तत्त्वचि० प्रत्यक्ष० पृ० १८३-२३३।

१. 'स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम्। न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन शक्यते॥' —श्लोकवा० सू० २. श्लो० ४७।

२. श्लोकवा० सू० ३. श्लो० ८५।

३. 'केचिदाहुर्द्वयं स्वतः।' —श्लोकवा० सू० २. श्लो० ३४३ तत्त्वसं० प० का० २८११. 'प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः।' —सर्वद० जैमि० पृ० २७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'स्वतः' तो कोई 'परतः' अनियमसे है। अभ्यासदशामें तो 'स्वतः' समझना चाहिए चाहे प्रामाण्य हो या अप्रामाण्य। पर अनभ्यास दशामें 'परतः' समझना चाहिए[1]।

जैनपरम्परा ठीक शान्तरक्षितकथित बौद्धपक्षके समान ही है। वह प्रामाण्य-अप्रामाण्य दोनोंको अभ्यासदशामें 'स्वतः' और अनभ्यासदशामें 'परतः' मानती है। यह मन्तव्य प्रमाणनयतत्त्वालोकके सूत्रमें ही स्पष्टतया निर्दिष्ट है। यद्यपि आ० हेमचन्द्रने अपने सूत्रमें प्रामाण्य-अप्रामाण्य दोनोंका निर्देश न करके परीक्षामुखकी तरह केवल प्रामाण्यके स्वतः-परतःका ही निर्देश किया है तथापि देवसूरिका सूत्र पूर्णतया जैन परम्पराका द्योतक है। जैसे—'तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति।' —परी० १. १३.। 'तदुभयमुत्पत्तौ परत एव ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्चेति' —प्रमाणन० १. २१।

इस स्वतः-परतःकी चर्चा क्रमशः यहाँ तक विकसित हुई है कि इसमें उत्पत्ति[2], ज्ञप्ति और प्रवृत्ति तीनोंको लेकर स्वतः-परतःका विचार बड़े विस्तारसे सभी दर्शनोंमें आ गया है और यह विचार प्रत्येक दर्शनकी अनिवार्य चर्चाका विषय बन गया है। और इसपर परिष्कारपूर्ण तत्त्वचिन्तामणि, गादाधरप्रामाण्यवाद आदि जैसे जटिल ग्रन्थ बन गये हैं।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

---

१. 'नहि बौद्धैरेषां चतुर्णामेकतमोऽपि पक्षोऽभीष्टोऽनियमपक्षस्येष्टत्वात्। तथाहि—उभयमप्येतत् किञ्चित् स्वतः किञ्चित् परतः इति पूर्वमुपवर्णितम्। अत एव पक्षचतुष्टयोपन्यासोऽप्ययुक्तः। पञ्चमस्याप्यनियमपक्षस्य सम्भवात्।' —तत्त्वसं० प० का० ३१२३।

२. प्रमेयक० पृ० १४९ से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org